International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

# प्रेम नारायण 'पंकिल' के काव्य में यथार्थ-वर्णन

**आमोद प्रकाश चतुर्वेदी[1], प्रो. डॉ. दिवाकर पाण्डेय[2]**

[1](शोधार्थी), हिन्दी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय आरा एवं
[2](शोध निर्देशक), अध्यक्ष हिन्दी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय आरा

**सारांश**

कवि प्रेम नारायण 'पंकिल' के काव्य में जीवन के विविध पक्षों का चित्रण मिलता है। मानव के जीवन में उतार-चढ़ाव, प्रेम-प्रतिशोध, घात-प्रतिघात, नियति के थपेड़े, दूसरों के द्वारा किया गये शोषण-उत्पीड़न और उनके विरुद्ध उसका जूझना और अपने संघर्ष के द्वारा परिस्थितियों पर विजय पाना इत्यादि चलते रहते हैं। कभी ये कष्ट प्रकृति प्रदत्त होते हैं तो कभी इनका कारण अपने ही बंधु-बांधव होते हैं। प्रकृति के कोप को तो मनुष्य किसी तरह सह लेता है किंतु अपने समाज में फैली विषमतायें उसे उद्वेलित कर देती हैं। ये विषमतायें कभी आर्थिक होती हैं तो कभी सामाजिक। इनमें पिसना पड़ता है तो मनुष्य को ही। पंकिल जैसे एक सजग कवि की दृष्टि से जीवन का एक भी पक्ष ओझल नहीं हो पाता है। उनके सम्पूर्ण काव्य में मानव जीवन के यथार्थ का चित्रण जहाँ-तहाँ बिखरा पड़ा मिलता है।

**बीज-शब्द:** यथार्थ, दैन्य, संताप, ममत्व, पिपासा, करुणा

मानव के जीवन में उतार-चढ़ाव, प्रेम-प्रतिशोध, घात-प्रतिघात, नियति के थपेड़े, दूसरों के द्वारा किया गये शोषण-उत्पीड़न और उनके विरुद्ध उसका जूझना और अपने संघर्ष के द्वारा परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करना इत्यादि चलते रहते हैं। कभी ये कष्ट प्रकृति प्रदत्त होते हैं तो कभी इनका कारण अपने ही बंधु-बांधव होते हैं। प्रकृति के कोप को तो मनुष्य किसी तरह सह लेता है किंतु अपने समाज में फैली विषमतायें उसे उद्वेलित कर देती हैं। ये विषमतायें कभी आर्थिक होती हैं तो कभी सामाजिक। इनमें पिसना पड़ता है तो मनुष्य को ही। पंकिल जैसे एक सजग कवि की दृष्टि से जीवन का एक भी पक्ष ओझल नहीं हो पाता है। उनके सम्पूर्ण काव्य में मानव जीवन के यथार्थ का चित्रण जहाँ-तहाँ बिखरा पड़ा मिलता है। उदाहरणस्वरूप वे एक निर्धन-दुखियारे परिवार का चित्रण करते हैं। और वह निर्धनता ऐसी निर्धनता है कि उसे देखकर मनुष्य तो क्या पक्षी भी दु:खी हो जाते हैं। पंकिल इस अपार दरिद्रता का वर्णन करने के लिये पक्षियों को ही चुनते हैं। जेठ की तपती दोपहरी-बीच एक शांत सरोवर के किनारे जल में चोंच डुबाए नतग्रीव खग़ एक दूसरे से 'आंगनों' की कुशल-क्षेम पूछ रहे हैं-

तातल जेठ की दोपहरी बिच एक दिना गँवई पिछुआरे

पास निरापद शांत सरोवर तीर जुरे खग वृंद बिचारे
ग्रीव नवाइ मनोहर नीर में चोंच डुबाइ पियास निवारे
आपस में खग आँगन के बतियावत पंकिल पंख पसारे।[1]

आँगन घर के भीतर एक खुली जगह मात्र नहीं होते हैं। वे घर के भीतर होते हैं- 'एक लघु आकाश'। वे स्त्रियों के उन्मुक्त हास के मंच रहे हैं, वे पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों की स्वायत्तता के प्रतीक रहे हैं। आँगन रहे हैं आश्रयदाता- कबूतरों, कौओं और गौरैयों के। हमारा यह आँगन, बाहरी दुनिया से भले ढँका-छुपा रह जाय पर यह कौवे और गौरैया से छुपा नहीं रह सकता। आज जब फ्लैट-सभ्यता का रहवासी अपने पड़ोसी से बात तक नहीं कर पाता, ऐसे में सघन बँसवार में कौवे से सटकर बतियाती गौरैया की कल्पना कितना सुकून देती है। कौवे के पूछने पर पंकिल की गौरैया सिसककर उस अभागे निर्धन की दशा का आँखों देखा हाल बताती है-

घन दुपहरिया सघन बँसवरिया में कगवा से सटि बतियावै गवरइया
फुदुकत बड़े भोरहरियैं निकसि गइली एक निरधन के बिरन अँगनइया
देखते का सुनलू बहिन दुलरइतिन पूछतै पखेरुआ के अइलीं रोअइया
चोंचिया पसरले चिंहुकि मन सुसुकत बतिया सुनाइ गइलीं नन्हकी चिरइया।[2]

स्वतंत्र भारत में गरीबी से लड़ने की बात कही जाती रही है। 'गरीबी हटाओ' का नारा देने वाले आज तक गरीबी नहीं हटा सके। गौरैया कहती है कि उसने देखा, बरसात के रूप में कैसे उस घर में विपत्ति गिर पड़ती है। पूरा घर एक तालाब बन जाता है। झाड़ू, पीढ़े और थाली उस तालाब में कछुए-मछली जैसे तैर रहे हैं। नवजात शिशु को बूंदों से बचाने के लिये माँ उसके ऊपर सूप ओढ़ा देती है। घर की भीत (दीवार) गिर जाती है, न जाने कैसे रात बीती होगी। वस्तुत: यह गरीबी पूरे हिंदुस्थान की गरीबी है। गँवई गरीबी और महानगरीय झोंपड़पट्टियों के भीतर पसरे अभाव में अद्भुत साम्य है।

देखली कि बरसल मेह हो घर भइलीं पोखरिया।
झाड़ू पिढ़इया बिरन फुटही थरिया/ तैरे लगल जैसे कछुआ मछरिया
सँपवा सी कलछी उरेह हो घर भइलीं पोखरिया
दुधमुँह बेटवा उबारै के मारे/ अधखड़ सुपवा सटवले कपारे
गृहिनी बचावैले देह हो घर भइलीं पोखरिया
हे बिरना कैसे कटल होइहैं रतिया/गिरि गइलीं भितिया टुटल झिलँगी खटिया
कइसन कँगलवा क गेह हो घर भइलीं पोखरिया।[3]

निर्धनता की कोई जाति नहीं होती, कोई क्षेत्र नहीं होता। आश्चर्य है कि आज़ादी के इतने वर्षों के बाद भी हमारे देश से निर्धनता का अभिशाप दूर नहीं हुआ है। धूमिल ने लिखा है-

हाय! जो असली कसाई है
उसकी निगाह में तुम्हारा यह तमिल-दु:ख

मेरी इस भोजपुरी पीड़ा का
भाई है।[4]

इस तरह हम कह सकते हैं कि पंकिल द्वारा चित्रित यह पीड़ा मात्र भोजपुरी समाज की पीड़ा नहीं है। यह पूरे भारतीय समाज के निर्धन वर्ग की पीड़ा है। प्रतिदिन गाँवों से साइकिल-सवार मजदूरों का जत्था सुबह-सुबह छत्ते से निकली मधुमक्खियों की भाँति निकटवर्ती नगरों की ओर दौड़- पड़ता है। यह भारत के हर छोटे-बड़े शहर का दृश्य है। मजदूरों के साथ साइकिल के कैरियर में बँधे उनके फावड़े, उनकी कुदालें या उनके सब्बल हर रोज उनकी इस यात्रा के सहचर होते हैं। हम कह सकते हैं शहर में अनाज या फलों-सब्जियों की ही मण्डियाँ नहीं लगती वरन् मजदूरों की भी मण्डियाँ लगती हैं। जो भाग्यशाली होते हैं उन्हें कोई साहब या ठेकेदार दिनभर के लिये ले जाता है बाकियों को खाली हाथ वापस घर आना पड़ता है। जैसे-जैसे दिन चढ़ता जाता है, वैसे-वैसे मजदूरों की आवाजों में रिरियाहट और साहबों-ठेकेदारों की आवाजों में किसी की बेबसी को खरीद लेने की निर्मम ठसक भरती जाती है। यह रोज की कहानी है। किसी को बेटी की शादी करनी है, किसी को बच्चे की फीस भरनी है, किसी को बीमार माँ-बाप के लिये दवा लेनी है तो किसी को मकान बनवाना है, और इन सभी आवश्यकताओं के साथ-साथ पेट की ज्वाला-शांति के लिये भोजन की व्यवस्था भी करनी है। मार्क्स के भारतीय अनुयायियों ने भारतीय गरीबी की आँच पर रोटियाँ भले सेंकी हो लेकिन उनका निराकरण करने के लिये कभी ईमानदार प्रयास नहीं किया। आज बंगाल और त्रिपुरा पिछड़े राज्यों में शुमार किये जाते है।धूमिल लिखते हैं-

...क्या तुम्हें अब भी/ उसी का भरोसा है
जिसके अधिकार में हमारी लिट्टी है/ चावल है। इडली है/ दोसा है[5]

समाज के सजग निरीक्षक पंकिल ने स्वयं यह दैन्य समाज में देखा है। इसलिये जब वह उसका अंकन करते हैं तो उनमें स्वाभाविकता के साथ-साथ मार्मिकता सहज ही दीख जाती है। वे जन्मना विरोधी दो पक्षियों, गौरैया और कौवे के द्वारा इस अभाव का वर्णन कराते हैं। शायद कवि यह दिखाना चाहता है कि इस गरीबी को देखकर ये पक्षी इतने द्रवित होते हैं कि अपना स्वाभाविक वैरभाव छोड़कर एक-दूसरे को इस निर्धनता की कथा सुनाते हुए उसका यथार्थ वर्णन करते हैं-

मुँहवा के आवै करेजवा हो बतिया सुनि कान
कइसन जगत निरमोहिया हो कस बिधिना बिधान
निरधन बम्हनवा के अँगना की गँछिया एक रात
हमरो कटल सुन बहिना रे अचरज अचरज एक रात[6]

निर्धन परिवार की वह स्त्री कहती है कि लेटने के लिये पीठ भर पुआल भी नहीं है, नन्हें बालक के ऊपर उढ़ाने के लिये एक फटी चादर तक नहीं है। अभाव इतना है कि घर में घुसे चोर को कोई ऐसी वस्तु दिखाई नहीं पड़ती है जिसे वह चुरा के ले जा सके। भीतर का दृश्य देखकर वह इतना द्रवित होता है कि खुद ही अपनी चादर इन दुखियारों के ऊपर उढ़ाकर चला जाता है-

तिरिया कहत मोर पिठियो तर नाहिं अटलैं पुआल
फटही चदरिया हमैं दे दा हो मोर ठिठुरल लाल

घरवा में घुसुरल चोरवा के नाहिं कुछहू नसीब
अपनों कमरिया ओढ़ाइ दिहलैं हो हाय कइसन गरीब[7]

मनरेगा के इस युग में हो सकता है कि ये बातें अतिशयोक्तिपूर्ण लगें, किंतु हमसे ठीक पहले की पीढ़ी (जिसमें पंकिल आते हैं) को इस यथार्थ का पता है। कविता में हर समय कल्पना की ऊँची उड़ान ही नहीं होनी चाहिये, उसमें यथार्थ का भी संतुलित किंतु काव्योचित चित्रण होना चाहिये। काव्य सदैव सौंदर्यस्वरूप ही नहीं हो सकता। शृंगार और हास के साथ ही काव्यशास्त्र करुण और जुगुप्सा को भी रसरूप में मान्यता देता है। शृंगारशतक के प्रणेता भर्तृहरि अपने वैराग्यशतक में वृद्धावस्था का यथार्थ वर्णन करते हैं-

गात्रं सङ्कुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दंतावलि:
दृष्तिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते।
वाक्यं नाद्रियते च बांधवजनो भार्या न शुश्रूयते
हा कष्टं पुरुषस्य जीर्ण्वयस: पुत्रोऽप्यमित्रायते॥[8]

(शरीर सिकुड़ गया है, चाल में लड़खड़ाहट आ गयी है, दाँत झड़ चुके हैं, आँखों से दिखाई तक न पड़ रहा है, कान बहरे हो रहे हैं, मुँह से लार टपकने लगी है, बंधु-बांधव बात तक नहीं सुन रहे हैं, पत्नी तक ने सेवा करना छोड़ दिया है, वृद्धावस्था में बेटा तक शत्रु बन गया है।)

किंतु कभी-कभी स्थिति यह भी होती है कि पुत्र धनार्जन के लिये न चाहते हुए भी माँ-बाप से दूर परदेस में रह रहा है या पत्नी के दबाव में उसे माता-पिता से अलग रहना हो रहा है किंतु उसे माँ की याद आती है। हिन्दी कविता में माँ के ऊपर लिखा तो गया है किन्तु उसकी मात्रा अतिन्यून है। कोई पुत्र घर से दूर रहकर अपनी माँ को कैसे याद करता है, पंकिल की कविता में देखें-

विनत सिर बिलखती रही श्वेतकेशी
शतक देवगृह का लगाया था फेरा
यही माँगती भीख आँचल पसारे
हमारी उमर ले जिये लाल मेरा
जले जेठ की निर्जला भीमसेनी
वही आज एकादशी याद आयी
गली साँकरी में उगा था जो ओढ़उल
न छूने किसी को दिया था कली को
सम्हाले निहारे चली जा रही थी
ठुनकते ललन की ललित पगतली को
पुलक पोपले गाल में खिलखिलाती
वह गंगाजली सी हँसी याद आयी[9]

जो माँ पुत्र की लम्बी आयु के लिये तपते जेठ में निर्जल रहकर पुत्र की लम्बी आयु के लिये प्रार्थना करती है, उसकी स्मृति में पुत्र का बिसूरना कितना स्वाभाविक है। यहाँ पुत्र भी माँ के लिये तड़पता है-

बड़े भोर उचरा मुरेरे पर कागा
सजल क्षीण आँखें धँसी याद आई
जुटा जो न पाई सुबह का कलेवा
जरठ अम्ब की बेबसी याद आई[10]

भर्तृहरि के वैराग्य-शतक की तरह पंकिल की भी एक सच्चाई बयान करती कविता है-'दतवै निपोर के का करबा'। इस कविता में वे बड़ी बेबाकी से समाज और मानव जीवन के कटु सत्य को सर्वथा नग्न रूप में हमारे सामने लाते हैं। अन्य कविताओं से अलग इसकी साफगोई बहुत कुछ कहती है-

हम तोंहसे कुल बतिया कहली सौ बार इहै मंठा महली
कुल गुर गोइठा भइले पर तूँ दँतवै निपोर के का करबा

* *

आपन तोहार केहू नइखै, भइहै नटई दबोच डलिहैं
तोहरै मेहरी बेटवा कपार कै, एक एक बार नोच घलिहैं
माटी ऊसर भइले पर ढेला फोर फोर के का करबा
कुल गुर गोइठा भइले पर तूँ दँतवै निपोर के का करबा

* *

अपनै में कुकुरन के पिल्लन अस बे मतलब गुर्राला का
जोगी होजा या भोग करा, बिच्चै में फँस चिल्लाला का
पियहीं वाला चल जइहैं तब रस घोर घोर के का करबा
कुल गुर गोइठा भइले पर तूँ दँतवै निपोर के का करबा [11]

हम पाते हैं पंकिल के काव्य में सामाजिक यथार्थ की सहज अभिव्यक्ति हुई है। बात चाहे निर्धनता की हो या वर्तमान युग में संतान द्वारा माता-पिता की उपेक्षा जैसी निन्दनीय बाते हों, पंकिल सबका चित्रण करते हैं। ऐसी ही एक घटना है जिसमें वृद्धा माता अपने पुत्र की उपेक्षा के बावजूद, उसे आशीर्वाद ही देती है। 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' का बोध हमें सर्वत्र ही मिलेगा। सच ही! माँ कितना कुछ करती है अपनी संतान के लिये। वृद्धावस्था में संतान द्वारा माँ-बाप की उपेक्षा आज के हमारे समाज का कटु सत्य है। माँ उसके व्यवहार से आहत है फिर भी सन्तान के लिये उसके मुख से आशीर्वाद ही निकलता है। पंकिल इसी को निम्न प्रकार से दर्शाते हैं-

ललना जूड़े रहिहा
हमरो ले उमिरिया जीहा तात, ललना जूड़े रहिहा

चउरे चउरे मिन्नत मनली
माघे कँपली जेठे तपली
निरजला बितवली केतनी रात, ललना जूड़े रहिहा
पेवना बीच पेवना सटली

छतिया दाबि रतिया कटली
ओदे नाहिं ठिठुरै देहली गात, ललना जूड़े रहिहा[12]

माँ बाहों के झूले में संतान को झुलाती है। लोरी गाती है। वही संतान विवाह के बाद बदल जाती है। पुत्र अपनी पत्नी के आगे माँ की उपेक्षा करता है। रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में गोस्वामी तुलसीदास पारिवारिक यथार्थ को उकेरते हैं। 'सुत मानहिं मातु पिता तबलौं/ अबलानन दीख नहीं जब लौं॥ ससुरारि पियारि लगी जब तें/ रिपुरूप कुटुम्ब भए तब तें'[13] में यह दृश्य गोस्वामी जी पाँच सौ वर्ष पूर्व देख चुके थे। आज यह घर-घर का यथार्थ है; पर माँ तो माँ है। इन सभी परिस्थितियों में उसका संतान के प्रति ममत्व कम नहीं होता है। पंकिल दर्ज करते हैं-

बहियाँ ले झुलवली पलना
लोरी दे सुलवली ललना
देखली तोहार मुहवाँ ना कुम्हिलात, ललना जूड़े रहिहा
माई बाबू घर से रूसी
मेहरि करिहैं कानाफूसी
अछनो धार रोइहैं कौरा खात,ललना जूड़े रहिहा
पइसा झींटि कगरे होइहैं
नइहरे की निनियाँ सोइहैं
नापि दीहैं ससुरै के औकात,ललना जूड़े रहिहा
जसुदा के कन्हइया हमरे
अइहा भइया हमरो पँजरे
चखिहा तनिकै हमरो रीन्हल भात, ललना जूड़े रहिहा
उलटी धारे जनि तूँ बहिहा
ललना हमरो पँजरे रहिहा
झरले फिर न जुरिहैं पंकिल पात, ललना जूड़े रहिहा[14]

यों तो पंकिल मृदुल भावों के कवि हैं लेकिन जब वे समसामयिक विद्रूपताओं को देखते हैं तो उनका शांत मन विद्रोह कर उठता है। चापलूसी, लालच, स्वार्थ आदि से लिपटते समाज को धिक्कारते हुये पंकिल लिखते हैं-

पानी पानी समसै दुनिया तबौ तरासन मरै जहान
इनकर उनकर तरवा चाटै छछनत फेवा भइल परान
कुआँ पियासल पोखर खातिर पोखर करै नदी कै ध्यान
मरै पियासल राजमहल के झुग्गी झोपड़ खेत सिवान
सिंधु पियासन सरिता छछनै पाटल चाहै बनल सरोज
हंस पियासन बगुला बिछपित सिंह पियास मरै घोड़रोज
तड़पै राज पियास भिखारी गुदरी मरै पियासन चीर
कौने घाट पियाई पानी एकर बड़ी गरम तासीर[15]

यह धन की पिपासा इतनी व्यापक है कि कवि कहता है कि किसका-किसका नाम लें, यहाँ तो सारा गाँव ही काली कमली लपेटे है अर्थात् सबके हाथ रंगे हैं। संसार स्वार्थ में अंधा हो गया है। नेह, मैत्री, करुणा और दया जैसे गुणों को देशनिकाला दे दिया गया हो-

जबसे लगत बुझल ना तबसे धावैं सब धुरियैले पाँव
केकर केकर लेही नउआँ कमरी ओढ़ले समसै गाँव
अपनै अपनै में सब आउर स्वारथ में आन्हर संसार
इनके कवन छुछूनर छुअलस छाती पीटैं धुनैं कपार
नेह दया करुना मैत्री सबही कै भइलैं देश निकास
महल अटारिन में सब बाझल सबके बस दौलत कै प्यास
सदगुन भयल तपेदिक रोगी धोंगी छलिया सकल समाज
मउअत बिसर गइल सबही के नख शिख भरैं तिजोरी आज[16]

कहना न होगा कि सामाजिक-पारिवारिक यथार्थ पंकिल के काव्य में अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हुआ है।

**संदर्भ-**

1. पंकिल, प्रेम नारायण: बहिनी कुटिल लछिमिनिया क राह रे (चोंचिया पसरले चिहुँक बोले पपिहा, पृ. 67) पोथीडॉटकॉम (2014)
2. वही,
3. वही, पृ. 68) पोथीडॉटकॉम (2014)
4. धूमिल: भाषा की रात, पुस्तक-संसद से सड़क तक (पृष्ठ 88), प्रकाशन : राजकमल प्रकाशन संस्करण : 2013
5. वही, पंकिल: बहिनी कुटिल लछिमिनिया क राह रे (चोंचिया पसरले चिहुँक बोले पपिहा, पृ. 68), पोथीडॉटकॉम (2014)
6. वही, भर्तृहरि: वैराग्यशतक पृ. 111
7. पंकिल,प्रेमनारायण: अभी-अभी चन्दा निकला है (पाण्डुलिपि से)
8. वही, पंकिल,प्रेमनारायण: मिला नाहीं सइयाँ का गाँव रे पृ. सं. 56 , पोथीडॉटकॉम (2020)
9. पंकिल, प्रेमनारायण: चोंचिया पसरले चिंहुँक बोले पपिहा, पृ. 61 पोथी डॉट कॉम (2019)
10. गो. तुलसीदास: उत्तरकाण्ड, रा.च.मा. 1/7/101
11. पंकिल: ललना जूड़े रहिहा, चोंचिया पसरले चिहुँक बोले पपिहा-61 पोथी डॉट कॉम (2019)
12. पंकिल, प्रेम नारायण: मिला नहीं सइयाँ का गाँव रे पृ.-77 पोथीडॉटकॉम (2020)
13. वही।